कोई ''कहां तक कहें युगों की बातें''

सुमित्रा महरोल

965046638

Drsumitra21@gmail.com

बहुविध स्तर पर सिसकते कराहते बिहार राज्य की सवाक् तस्वीर है कथाकार मिथलेश्वर की आत्मकथा का दूसरा भाग ''कहां तक कहें युगों की बातें''। समकालीन जीवन की प्रामाणिक व जीवंत धड़कनें इस कृति में समाई हैं। जीवन के नाना क्षेत्रों में भीतर तक पैठ जमाए भ्रष्टाचार का निर्भीकता से उल्लेख कथाकार ने इस कृति में किया है। चाहे वह उच्च शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे प्राथमिक शिक्षा पर काबिज माफिया राज का, चाहे वह बिहार राज्य की रेल व्यवस्था हो, चाहे सरकारी चिकित्सालयों की कुव्यवस्था से लेकर प्राइवेट अस्पतालों में पांव पसारते अनाचार का, चाहे वह माता–पिता द्वारा तय किए जाने वाले वैवाहिक संबंधों के दौरान कन्या पक्ष की स्थिति का स्वाभाविक चित्रण हो; सभी प्रसंगों में समकालीन यथार्थ के उजले धुंधले पक्ष अपने पूरे सरोकार और संवेदनशीलता के साथ पाठकों के समक्ष आए हैं, और यह सभी कुछ रचनाकार के जीवन के विविध प्रसंगों के माध्यम से चित्रित हुआ है, कुछ भी आरोपित नहीं, कहने या बताने के लिए कुछ नहीं कहा गया है, बल्कि निरन्तर घटित होते जीवन के साथ यह सभी कुछ अनायास ही बहता चला आया है।

कितनी बड़ी विसंगति है कि उच्च शिक्षा की बड़ी उपाधियों में से एक पी.एच.डी की डिग्री भी बिहार राज्य में गहन अध्ययन, चिन्तन एवं परिश्रम से नहीं बल्कि बहुधा धन से अर्जित की जाती है। धन से उपाधि खरीदने वाले व्यक्तियों का चरित्र, मूल्य व सोच कैसे होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। विडम्बना यह है कि इन जैसों के ऊपर ही देश की युवा पीढ़ी को दिशा एवं शिक्षा देने का कार्य सोंपा गया है। जो स्वयं दिशाहीन हैं वह इस गुरुतर कार्य का निर्वाह किस प्रकार करते होंगे यह चिन्तनीय है। आत्मकथा में एक सीन पर लेखक कहता है–''इस दौरान शोध कार्यों का जैसा व्यापक अवमूल्यन देखा था, उसने शोध से मेरे मन की दूरी और बढ़ा दी थी। विश्वविद्यालय के कुछ पेशेवर शिक्षकों ने इसे व्यवसाय का रूप दे दिया था। वे विभिन्न विश्वविद्यालयों से शोध प्रबंधों की प्रतियां किसी भांति ले आते। फिर उसका शीर्षक बदल अपने किसी छात्र का नया शोध बना देते। इसमें बिना कुछ लिखे पढ़े उस छात्र के नाम किसी और का शोध प्रबंध परिवर्तित शीर्षक से टाइप हो जाता। फिर विश्वविद्यालयों की प्रक्रियाओं के तहत उसे पी–एच.डी. की उपाधि भी हासिल हो जाती। हालांकि इसके लिए उसके पेशेवर शोध निदेशक उससे मोटी रकम लेते। विश्वविद्यालय स्तर पर यह धंधा इतना विकसित हो चुका था कि थोक के हिसाब से शोध प्रबंध टाइप होते तथा पी–एच.डी. की उपाधियां उसी संख्या में प्रदान की जातीं। ऐसे में कहीं कोई वास्तविक शोध प्रबंध तैयार भी होता तो वह नक्कारखाने में तूती की आवाज बन जाता। यह कथन चरितार्थ होने लगा था कि खोटे सिक्कों की भरमार में वास्तविक सिक्कों की पहचान क्या। (पृष्ठ 50, 51)

प्राथमिक शिक्षा में फेले माफिया राज का पता लेखक को तब चलता है जब टीचर ट्रेनिंग करने के दस वर्ष बाद उनकी पत्नी रेणू प्राथमिक शिक्षिका के रूप में नियुक्त होती है। इस प्रसंग में नियुक्ति पत्र पाने

से लेकर, नियुक्त होने और नियुक्त होने के बाद विभिन्न स्थानान्तरणों का सन्दर्भ वस्तुस्थिति से पाठक को परिचित कराता है। राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा जारी किए गए नियुक्ति पत्र के अनुसार जिस विद्यालय में रेणू जी को नियुक्त किया गया था उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। संबंधित विभाग अपनी इस भयंकर चूक पर शर्मिंदा व जवाबदेह होने के स्थान पर अपनी गलती को ठीक करने की एवज में रेणू जी से धनराशि की अपेक्षा रखता है। बड़ी कठिनाई से रेणू जी को सही नियुक्ति पत्र मिल पाता है। नियुक्ति के बाद भी स्थानान्तरण की तलवार लटका कर संबंधित अधिकारी उन्हें तरह–तरह से प्रताड़ित करते रहते हैं। इस प्रसंग में द्रष्टव्य है–''मैं तो स्थानान्तरण को ही प्राथमिक शिक्षा का सबसे बड़ा अनाचार मान रहा था। यहां तो एक से बढ़कर एक हैरतअंगेज कारनामे हैं। सस्पेंड जैसा दंड घूस की छोटी रकम के लिए या फिर अपनी मनमानी और तानाशाही कायम रखने के वास्ते...। और सस्पेंड की प्रक्रिया भी कैसी? बिना किसी स्पष्टीकरण के, बिना कोई जांच बिठाए सीधे आदेश निर्गत कर देना। (पृष्ठ 155)

प्राथमिक शिक्षक से शिक्षा के साथ लिए जाने वाले शिक्षकेत्तर कार्यों का ब्यौरा भी लेखक ने दिया है। इस प्रसंग में कदम कदम पर फेला हुआ भ्रष्टाचार पाठक को सोचने पर विवश कर देता है कि इतनी भीतर तक पैठे हुए भ्रष्टाचार से मुक्ति किस तरह संभव हो पाएगी, कभी संभव हो भी पाएगी या नहीं और यदि हां तो उसमें कितना समय लगेगा।

कुप्रबंध, अव्यवस्था और अनाचारों से चिकित्सा जैसा क्षेत्र भी बचा हुआ नहीं है। अध्यापन के दौरान रांची में अचानक बीमार होने पर राजकीय चिकित्सालय पहुंचे मिथिलेश्वर जी को अनेक तिक्त अनुभवों का सामना करना पड़ता है–''वहां की अव्यवस्था और इलाज के नाम पर ठंडी निष्क्रियता देख हमारा मन तिक्त हो गया। एमरजेंसी कक्ष पूछते–पूछते हम जहां पहुंचे वहां किसी चिकित्सक को उपलब्ध नहीं पाया। कक्ष के दरबान ने दिन के दस बजे आने को कहा। एमरजेंसी चिकित्सा के हमारे बार–बार के आग्रह पर बगल के कमरे में सोए एक डॉक्टर को वह अनिच्छा से जगा लाया। वह हमें डॉक्टर कम मेडिकल का छात्र अधिक जान पड़ा... बगैर मेरी जांच पड़ताल किए मुझे हटाने के उद्देश्य से उसने एक पुर्जे पर कुछ दवाएं लिख दीं। खोदा पहाड़ निकली चुहिया। हमारा मन और व्यथित हो गया। अस्पताल की ड्यूटी पर तैनात वही चिकित्सक जो मरीजों के साथ लापरवाही और उपेक्षा बरतते, अपने प्राइवेट क्लिनिक पर पहुंचे मरीजों का पूरे मन और उत्साह से इलाज करते। (पृष्ठ 5, 6)

प्राइवेट क्लिनिकों में चल रहे यौन अनाचारों का विवरण भी इस कृति में आया है। दूर–दराज के ग्रामीण अंचलों से मरीज के साथ आए हुए परिजनों की विवश व दयनीय स्थिति का लाभ इन क्लिनिकों में तैनात कर्मचारी अपनी यौन पिपासाओं की पूर्ति के रूप में उठाते हैं। ''इन कंपाउंडरों ने इन अस्पतालों को वेश्यालय बना दिया है... भर्ती किए मरीजों के लिए जिन कंपाउंडरों को रक्षक समझ बहाल किया है वे तो भक्षक हैं।'' (पृष्ठ 94)

किसानों के मध्य आपसी ईर्ष्या व द्वेष के परिणाम कितने घातक होते हैं इसका पता तब चलता है जब तनिक से आपसी विवाद के चलते एक कर्मठ किसान को गोली मार कर मरणासन्न स्थिति में अस्पताल लाया जाता है और इलाज के दौरान ही उसकी मौत हो जाती है–''वह आरा से निकट के गांव का वासी था। उसके पास जमीन बहुत कम थी। इस कारण धान गेहूं, चना, मटर आदि की खेती न कर वह सब्जियां उपजाता। वह इतना मेहनती था और खेती की ऐसी समझ रखता था कि साल भर उसके खेत में सब्जियां लदराई रहतीं उसकी बगल के किसान उससे ईर्ष्या करते। इनकी ईर्ष्या से उपजे द्वेष की परिणति में ही यह घटना घटी।'' (पृष्ठ 98)

मनोविकार आज सामाजिकता पर पूरी तरह से हावी हैं। उच्चतर मानवीय मूल्य ह्रास की कगार पर हैं। आपसी ईर्ष्या व द्वेष के कारण तनिक सी बात पर इस तरह की घटनाएं आज आम हैं पर इस घटना पर मेरा मन देर तक पीड़ित बना रहा–''मैं इस जानकारी से अवगत हो चुका था कि उसके घर में कमाने वाला दूसरा पुरुष नहीं है तो क्या परिवार की महिलाएं विरासत में खेती सम्भालेंगी? उसकी तरह सब्जियां उगाएंगी। आर–पार के संघर्ष को सलट लेंगी... संभव है कुछ हो। संभव है, वे बर्बाद हो जाएं।''

विवाह योग्य होने पर बड़ी बेटी के लिए वर ढूंढ़ने का सन्दर्भ वास्तविक रोचक व मनोहारी है। बदलते हुए सामाजिक मूल्यों ने इस क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोड़ा है। इसने भी आज व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। सम्भ्रान्त, पढ़े–लिखे अच्छी नौकरीशुदा बेटों के परिवार किस तरह से कन्या पक्ष को परेशान करते हैं इसका जीवन्त चित्रण लेखक ने इस प्रसंग में किया है। कभी कुंडली, कभी फोटो की आड़ में वर पक्ष कन्या पक्ष को पीड़ित करता है। इतना ही नहीं दहेज की आड़ में मोटी रकम वसूलना भी उनका उद्देश्य रहता है। तुर्रा यह है कि जब हमने अपनी बेटियों के विवाह में मुंह मांगी रकम दी है तो अब लेने के समय हम पीछे कैसे रह जाएं आखिर लड़के को पालने पोसने, पढ़ाने लिखाने व अच्छी नौकरी के लायक बनाने में हमारा भी तो धन और समय लगा है। अच्छी नौकरी से प्राप्त सुख सुविधा का लाभ आखिर लड़की ही तो उठाएगी।

मिथिलेश्वर जी ने ग्यारह कहानी संग्रहों और छह उपन्यासों का सृजन किया है। कुछ विशिष्ट व पाठकों द्वारा विशेष रूप से सराही गई रचनाओं की पृष्ठभूमि में मौजूद परिस्थितियों व सृजन के लिए प्रेरक दवाब के क्षणों का वर्णन भी इस रचना में आया है। ''तिरिया जनम'' कहानी समाज के मेरे लंबे अनुभवों की देन थी। बचपन से ही मैं अपने गांव में स्त्री जीवन की घोर उपेक्षा, दमन और अपमान का साक्षी रहा हूं... लेखक ने कोशिश की कि नारी की नारकीय यातना से संबंधित उस समय के अनुभव की जीवंत रूप में अभिव्यक्ति कर सकें।

''यह अंत नहीं'' उपन्यास कलेवर की दृष्टि से बड़ा उपन्यास बन गया। यहां मैंने यह अनुभव किया कि अंतहीन समस्याओं के मकड़जाल में फंसे आज के गांवों की समस्याएं भी अंतहीन हैं। गांव की शक्ल को जिन वारदातों ने ज्यादा बदरंग किया है उसमें हत्याओं और नरसंहारों की भूमिका सर्वोपरि है... जाति धर्म और सेना, संगठन के नाम पर मारे जाने वाले निरीह लोगों की लाशों और उनके बिलखते परिवार जनों को देखते हुए अंतहीन बनती इस बर्बरता ने इस उपन्यास रचना के दौरान लेखक को व्यथित किया था।'' (पृष्ठ 277)

''मनबोध मउआर'' कहानी के मनबोध मउआर को कई रूपों और जगहों में मैंने देखा है। बचपन में मेरे गांव के कुछ लोग बिलकुल मनबोध मउआर की तरह जीते थे। अपने नफे नुकसान की परवाह किए बगैर दूसरों के मामलों में कूद जाते और गलत और अन्याय करने वालों से जूझ पड़ते। लेकिन अब वैसे चरित्र मुझे नहीं दिखते। (पृष्ठ 279)

''पानी बीच मीन पियासी'' मिथिलेश्वर जी की आत्मकथा का पहला भाग है। शैशवावस्था से लेकर छात्र जीवन, ग्रामीण जीवन और परिवेश, विवाह प्रसंग, ग्राम से आरा में बसने के जीवन्त मनोहारी चित्रण के साथ–साथ लेखक के लेखकीय जीवन की यात्रा के संघर्षपूर्ण चित्र इस भाग में अपने पूरे विस्तार व संवेदनशीलता के साथ न केवल आए हैं बल्कि पूरी तल्लीनता के साथ पाठक को पृष्ठ दर पृष्ठ पलटने को विवश कर देते हैं। यहां मैं यह भी कहना चाहूंगी कि निजीकरण के माध्यम से सामाजिक जीवन के सरोकारों

से पाठकों का परिचय होता है पर आत्मकथा के दूसरे भाग में सामाजिक जीवन व परिवेश सम्यक् विस्तार व गहराई के साथ पाठकीय चेतना को झकझोरने में सफल नहीं हो पाया है। निजी जीवन की सरस व मनोहारी झांकियां सीमित मात्रा में पाठकों को रसमग्न करती हैं। निश्चय ही अपने शीर्षक के समान लेखक यह कहने में पर्याप्त रूप से सफल रहा है कि ''कहां तक कहें युगों की बातें''।

डॉ. सुमित्रा महरोल

डी–160, ग्राउंड फ्लोर,

रामप्रस्थ कॉलोनी

गाजियाबाद–201011

मो. 965046638

Drsumitra21@gmail.com